

देव-शास्त्र-गुरु पूजन

(बाबू जुगलकिशोरजी 'युगल' कृत)

केवल-रवि-किरणों से जिसका, सम्पूर्ण प्रकाशित है अन्तर।
उस श्री जिन-वाणी में होता, तत्त्वों का सुन्दरतम दर्शन॥
सद्दर्शन-बोध-चरण पथ पर, अविरल जो बढ़ते हैं मुनिगण।
उन देव परम-आगम गुरु को, शत-शत वन्दन, शत-शत वन्दन॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

इन्द्रिय के भोग मधुर विष-सम, लावण्यमयी कंचन काया।
यह सब कुछ जड़ की क्रीडा है, मैं अबतक जान नहीं पाया॥
मैं भूल स्वयं निज वैभव को, पर-ममता में अटकाया हूँ।
अब निर्मल सम्यक्-नीर लिये, मिथ्यामल धोने आया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़-चेतन की सब परिणति प्रभु! अपने-अपने में होती है।
अनुकूल कहें प्रतिकूल कहें, यह झूठी मन की वृत्ति है॥
प्रतिकूल संयोगों में क्रोधित, होकर संसार बढ़ाया है।
सन्तप्त हृदय प्रभु! चन्दन सम, शीतलता पाने आया है॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

उज्ज्वल हूँ कुन्द-धवल हूँ प्रभु! पर से न लगा हूँ किञ्चित् भी।
फिर भी अनुकूल लगें, उन पर, करता अभिमान निरन्तर ही॥
जड़ पर झुक-झुक जाता चेतन, की मार्दव की खण्डित काया।
निज शाश्वत अक्षत-निधि पाने, अब दास चरण-रज में आया॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

यह पुष्प सुकोमल कितना है, तन में माया कुछ शेष नहीं।
निज अन्तर का प्रभु! भेद कहूँ, उसमें ऋजुता का लेश नहीं॥
चिंतन कुछ फिर संभाषण कुछ, वृत्ति कुछ की कुछ होती है।
स्थिरता निज में प्रभु पाऊँ जो, अन्तर-कालुष धोती है॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।